

उज्जयिन्यां तदा देवैर्महाकोलाहलः कृतः। महाकालः कुतीर्थोभूज्जन्तूनां तत्र नाशकृत् ॥१४०॥
 गन्धतोयलसद्दृष्टिः कृता देवैः सुभक्तितः। तत्र गन्धवती नाम्नी नदी जातेति भूतले ॥१४१॥
 स श्रीमान्वरभोगसंगनिरतो ज्ञात्वा मुनेर्वाक्यतः स्वल्पं जीवितमात्मनो हि सकलं त्यक्त्वा कलत्रादिकम्।
 धृत्वा चारु तपो जिनेन्द्रकथितं सोढ्वापशूपद्रवं देवोभूत्सुकुमालनिर्मलमुनिर्भूयात्सतां शान्तये ॥१४२॥

इति कथाकोशे श्रीसुकुमालमुनेराख्यानं समाप्तम्।

५८. सुकौशलमुनेः कथा

अर्हन्तं त्रिजगत्पूतं भारतीं भुवनोत्तमाम्। नत्वा गुरुं प्रवक्ष्येहं सुकौशलकथामिमाम् ॥१॥
 अयोध्यायां महाराजः प्रजापालो गुणोज्ज्वलः। श्रेष्ठी सिद्धार्थनामाभूद्भनैर्धान्यैः समन्वितः ॥२॥
 द्वात्रिंशत्तस्य संजाता भार्याः सद्रूपमण्डिताः। सर्वास्ताः कर्मयोगेन कामिन्यः पुत्रवर्जिताः ॥३॥
 अहो पुत्रं विना नारी राजते नैव भूतले। रूपलावण्ययुक्तापि वल्लीव निष्फला भुवि ॥४॥

विलक्षण हुआ करता है। सुकुमाल मुनि अच्युतस्वर्ग में देव होकर अनेक प्रकार के दिव्य सुखों को भोगते हैं और जिनभगवान् की भक्ति में सदा लीन रहते हैं। सुकुमाल मुनि की इस वीर मृत्यु के उपलक्ष्य में स्वर्ग के देवों ने आकर उनका बड़ा उत्सव मनाया। 'जय जय' शब्द द्वारा महाकोलाहल हुआ। इसी दिन से उज्जैन में महाकाल नाम के कुतीर्थ की स्थापना हुई, जिसके कि नाम से अगणित जीव रोज वहाँ मारे जाने लगे और देवों ने जो सुगन्ध जल की वर्षा की थी, उससे वहाँ की नदी गन्धवती नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१३८-१४१॥

जिसने दिनरात विषय-भोगों में ही फँसे रहकर अपनी सारी जिन्दगी बिताई, जिसने कभी दुःख का नाम भी न सुना था, उस महापुरुष सुकुमाल ने मुनिराज द्वारा अपनी तीन दिन की आयु सुनकर उसी समय माता, स्त्री, पुत्र आदि स्वजनों को, धन-दौलत को और विषय-भोगों को छोड़-छाड़कर जिनदीक्षा ले ली और अन्त में पशुओं द्वारा दुःसह कष्ट सहकर भी जिसने बड़ी धीरता और शान्ति के साथ मृत्यु को अपनाया। वे सुकुमाल मुनि मुझे कर्तव्य के लिए कष्ट सहने की शक्ति प्रदान करें ॥१४२॥

५८. सुकौशल मुनि की कथा

जगत्पवित्र जिनेन्द्र भगवान् जिनवाणी और गुरुओं को नमस्कार कर सुकौशल मुनि की कथा लिखी जाती है ॥१॥

अयोध्या में प्रजापाल राजा के समय में एक सिद्धार्थ नाम के सेठ हुए हैं। उनके बतीस अच्छी-अच्छी सुन्दर स्त्रियाँ थीं। पर खोटे भाग्य से उनकी कोई सन्तान न थी। स्त्री कितनी भी सुन्दर हो, गुणवती हो, पर बिना सन्तान के उसकी शोभा नहीं होती। जैसे बिना फल-फूल के लताओं की शोभा नहीं होती। इन स्त्रियों में जो सेठ की खास प्राणप्रिया थी, जिस पर कि सेठ महाशय का

तासां मध्ये तु या भार्या श्रेष्ठिनः प्राणवल्लभा। पुत्रार्थं यक्षदेवान्सा पूजयन्ती जयावती ॥५॥
 प्रोक्ता ज्ञानिमुनीन्द्रेण भो सुते दुःखदायिनीम्। त्यक्त्वा भक्तिं कुदेवानां जैनधर्मे स्थिरा भव ॥६॥
 येन ते सप्तवर्षाणां मध्ये स्याद् गर्भसंभवः। तच्छ्रुत्वा सा च संतुष्टा जिनधर्मे दृढाभवत् ॥७॥
 यद्वाञ्छा मानसे नित्यं वर्तते सुतरां भुवि। तद्वस्तु प्राप्तिसान्निध्ये भवेद्धर्षो न कस्य वै ॥८॥
 ततः कैश्चिद्विनैस्तस्या जयावत्याः सुधर्मतः। सुकौशलो लसत्कान्तिः पुत्रो जातो मनोहरः ॥९॥
 श्रेष्ठी सिद्धार्थनामासौ दृष्ट्वा तन्मुखपंकजम्। नयंधरमुनेः पार्श्वे सुधीर्दीक्षां गृहीतवान् ॥१०॥
 मां बालपुत्रसंयुक्तां मुक्त्वा जातो मुनिस्त्विति। जयावती महाकोपं चक्रे सिद्धार्थसन्मुनौ ॥११॥
 अहो चास्मै मुनीन्द्रस्य युक्तं दातुं तपः किमु। कोपान्मुनिप्रवेशस्तु निषिद्धः स्वगृहे तया ॥१२॥

अत्यन्त प्रेम था, वह पुत्र प्राप्ति के लिए सदा कुदेवों की पूजा-मानता किया करती थी। एक दिन उसे कुदेवों की पूजा करते एक मुनिराज ने देख लिया। उन्होंने तब उससे कहा-बहिन, जिस आशा से तू इन कुदेवों की पूजा करती है वह आशा ऐसा करने से सफल न होगी। कारण सुख-सम्पत्ति, सन्तान प्राप्ति, नीरोगता, मान-मर्यादा, सद्बुद्धि आदि जितनी अच्छी बातें हैं, उन सबका कारण पुण्य है। इसलिए यदि तू पुण्य-प्राप्ति के लिए कोई उपाय करे तो अच्छा हो। मैं तुझे तेरे हित की बात कहता हूँ कि इन यक्षादिक कुदेवों की पूजा-मानता छोड़कर, जो कि पुण्य-बन्ध का कारण नहीं है, जिनधर्म का विश्वास कर। इससे तू सत्पथ पर आ जायेगी और फिर तेरी आशा भी पूरी होने लगेगी। जयावती को मुनि का उपदेश रुचा और वह अब से जिनधर्म पर श्रद्धा करने लगी। चलते समय उसे ज्ञानी मुनि ने यह भी कह दिया था कि जिसकी तुझे चाह है वह चीज तुझे सात वर्ष के भीतर-भीतर अवश्य प्राप्त होगी। तू चिन्ता छोड़कर धर्म का पालन कर। मुनि का यह अंतिम वाक्य सुनकर जयावती को बड़ी भारी खुशी हुई और क्यों न हो? जिसकी कि वर्षों से उसके हृदय में भावना थी वही भावना तो अब सफल होने को है न! अस्तु! मुनि का कथन सत्य हुआ। जयावती ने धर्म के प्रसाद से पुत्र-रत्न का मुँह देख पाया। उसका नाम रखा गया सुकौशल। सुकौशल खूबसूरत और तेजस्वी था ॥२-९॥

सिद्धार्थ सेठ विषय-भोगों को भोगते-भोगते कंटाल गए थे। उनके हृदय की ज्ञानमयी आँखों ने उन्हें अब संसार का सच्चा स्वरूप बतला कर बहुत डरा दिया था। वे चाहते तो नहीं थे कि एक मिनट भी संसार में रहे, पर अपनी सम्पत्ति को सम्हाल लेने वाला कोई न होने से पुत्र-दर्शन तक, उन्हें लाचारी से घर में रहना पड़ा अब सुकौशल हो गया, इसका उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। वे पुत्र का मुखचन्द्र देखकर और अपने सेठ पद का उसके ललाट पर तिलक कर आप श्री नयंधर मुनिराज के पास दीक्षा ले गए। अभी बालक को जन्मते ही तो देर न हुई कि सिद्धार्थ सेठ घर-बार छोड़कर योगी हो गए। उनकी इस कठोरता पर जयावती को बड़ा गुस्सा आया। न केवल सिद्धार्थ पर ही उसे गुस्सा आया किन्तु नयंधर मुनि पर भी। इसलिए कि उन्हें इस समय सिद्धार्थ को दीक्षा देना उचित न था और

हा कष्टं मोहतो जन्तुः सद्धर्मं त्यजति ध्रुवम्। जन्मान्धको यथा चिन्तामणिं हस्तस्थितं कुधीः ॥१३॥
 वृद्धिं प्राप्य ततः सोपि सुकौशलवणिक्पतिः। द्वात्रिंशत्कुलजाः कन्याः परिणीय गुणोज्ज्वलाः ॥१४॥
 नाना भोगान्प्रभुञ्जानः संस्थितः पूर्वपुण्यतः। जन्तूनां पूर्वपुण्येन सम्पदो विविधा भवेत् ॥१५॥
 एकदा जननीभार्याधात्रिकाभिः समन्वितः। स्वप्रासादोपरिस्थोसौ सुकौशलवणिग्वरः ॥१६॥
 पश्यन्पुरस्य सच्छोभां तत्रायातं मुनीश्वरम्। नाना देशान्विहत्योच्चैर्दृष्ट्वा सिद्धार्थमद्भुतम् ॥१७॥
 कोयं मातः सुधीरेवं पृष्ठवान् जननीं मुदा। जयावती क्रुधा प्राह रंकोयं याति कोपि भो ॥१८॥
 तदा सुकौशलेनोक्तं सावधानेन धीमता। सर्वलक्षणयुक्तत्वा-न्नायं रंको भवत्यहो ॥१९॥
 सुनन्दा धात्रिकावोचत्तदा तन्मातरं प्रति। न युक्तं निन्दितं वाक्यं वक्तुं चास्य महामुनेः ॥२०॥

इसी कारण मुनि मात्र पर उसकी अश्रद्धा हो गई। उसने अपने घर में मुनियों का आना-जाना तक बन्द कर दिया। बड़े दुःख की बात है कि यह जीव मोह के वश हो धर्म को भी छोड़ बैठा है। जैसे जन्म का अन्धा हाथ में आए चिन्तामणि को खो बैठा है ॥१०-१३॥

वयः प्राप्त होने पर सुकौशल का अच्छे-अच्छे घराने की कोई बत्तीस कन्या-रत्नों से ब्याह हुआ। सुकौशल के दिन अब बड़े ऐशो आराम के साथ बीतने लगे। माता का उस पर अत्यन्त प्यार होने से नित नई वस्तुएँ उसे प्राप्त होती थीं। सैकड़ों दास-दासियाँ उसकी सेवा में सदा उपस्थित रहा करती थी। वह जो कुछ चाहता वह कार्य उसकी आँखों के इशारे मात्र से होता था। सुकौशल को कभी कोई बात के लिए चिन्ता न करनी पड़ती थी। सच है, जिनके पुण्य का उदय होता है उन्हें सब सुख-सम्पत्ति सहज में प्राप्त हो जाती हैं ॥१४-१५॥

एक दिन सुकौशल, अपनी माँ, अपनी स्त्री और अपनी धाय के साथ महल पर बैठा अयोध्या की शोभा तथा मन को लुभाने वाले प्रकृति की नई-नई सुन्दर छटाओं को देख-देखकर बड़ा खुश हो रहा था। उसकी दृष्टि कुछ दूर तक गई उसने एक मुनिराज को देखा। ये मुनि इसके पिता सिद्धार्थ ही थे। इस समय कई अन्य नगरों और गाँवों में विहार करते हुए ये आ रहे थे। इनके वंदन पर नाममात्र के लिए भी वस्त्र न देखकर सुकौशल बड़ा चकित हुआ। इसलिए कि पहले कभी उसने मुनि को देखा नहीं था। उनका अजीब वेष देखकर सुकौशल ने माँ से पूछा-माँ, यह कौन है? सिद्धार्थ को देखते ही जयावती की आँखों में खून बरस गया। वह कुछ घृणा और कुछ उपेक्षा कर बोली-बेटा, होगा कोई भिखारी, तुझे इससे क्या मतलब परन्तु अपनी माँ के इस उत्तर से सुकौशल को सन्तोष नहीं हुआ। उसने फिर पूछा-माँ, यह तो बड़ा खूबसूरत और तेजस्वी देख पड़ता है। तुम इसे भिखारी कैसे बताती हो? जयावती को अपने स्वामी पर ऐसी घृणा करते देख सुकौशल की धाय सुनन्दा से न रहा गया। वह बोल उठी-अरी ओ, तू इन्हें जानती है कि ये हमारे मालिक हैं। फिर भी तू इनके सम्बन्ध में ऐसा उल्टा सुझा रही है? तुझे यह योग्य नहीं। क्या हो गया यदि ये मुनि हो गए तो? इसके लिए क्या तुझे इनकी निन्दा करनी चाहिए? इसकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि सुकौशल की माँ

मुग्धे कुलप्रभोस्ते च ततो रुष्टा तु सा जगौ। तिष्ठ मौनेन नेत्राभ्यां वारयामास धात्रिकाम् ॥२१॥
 दुष्टस्त्रीमानसे नास्ति धर्मस्नेहः कदाचन। यथा ज्वलन्महावह्नि-मध्यभागो न शीतलः ॥२२॥
 मात्राहं वंचितः कष्टं चिन्तयन्निजचेतसि। तदा सुकौशलो धीमान्सूपकारेण भाषितः ॥२३॥
 जाता भोजनवेलेति भो स्वामिन्क्रियते कृपा। तथा मातृस्वभार्याभिः प्रेरितो भोजनाय सः ॥२४॥
 तेनोक्तं धीमता तत्र मया सत्यस्वरूपकम्। अस्योत्तमपुरुषस्य ज्ञात्वा भोक्तव्यमित्यलम् ॥२५॥
 ततः सुनन्दया धात्र्या प्रोक्तं पूर्वं प्रघट्टकम्। सुकौशलः समाकर्ण्य महावैराग्ययोगतः ॥२६॥
 गत्वा तस्य मुनेः पार्श्वं नत्वा पादद्वयं मुदा। ज्ञात्वा धर्मस्य सद्भावं जिनेन्द्रैः परिकीर्तितम् ॥२७॥
 सुभद्रायाः स्वभार्याया गर्भस्थाय सुताय च। दत्त्वा श्रेष्ठिपदं शीघ्रं त्यक्त्वा मोहादिकं धनम् ॥२८॥
 नत्वा सिद्धार्थनामानं पुनस्तं मुनिसत्तमम्। दीक्षामादाय जैनेन्द्रीं मुनिर्जातो विचक्षणः ॥२९॥
 यः सुधीः पूर्वपुण्येन संयुक्तो धर्मवत्सलः। सावधानो हिते नित्यं स केन भुवि वंच्यते ॥३०॥
 आर्त्तध्यानेन सा मृत्वा श्रेष्ठिनी तु जयावती। देशे मगधसंज्ञे च गिरौ मौद्गिलनामनि ॥३१॥

ने उसे आँख के इशारे से रोककर कह दिया कि चुप क्यों नहीं रह जाती। तुझसे कौन पूछता है, जो बीच में ही बोल उठी! सच है, दुष्ट स्त्रियों के मन में धर्म-प्रेम कभी नहीं होता। जैसे जलती हुई आग का बीच का भाग ठंडा नहीं होता ॥१६-२२॥

सुकौशल ठीक तो न समझ पाया, पर उसे इतना ज्ञान हो गया कि माँ ने मुझे सच्ची बात नहीं बतलाई। इतने में रसोइया सुकौशल को भोजन कर आने के लिए बुलाने आया। उसने कहा-प्रभो, चलिए। बहुत समय हो गया। सब भोजन ठंडा हुआ जाता है। सुकौशल ने तब भोजन के लिए इंकार कर दिया। माता और स्त्रियों ने भी बहुत आग्रह किया, पर वह भोजन करने को नहीं गया। उसने साफ-साफ कह दिया कि जब तक मैं उस महापुरुष का सच्चा-सच्चा हाल न सुन लूँगा तब तक भोजन नहीं करूँगा। जयावती को सुकौशल के इस आग्रह से कुछ गुस्सा आ गया, सो वह तो वहाँ से चल दी। पीछे सुनन्दा ने सिद्धार्थ मुनि की सब बातें सुकौशल से कह दीं। सुनकर सुकौशल को कुछ दुःख भी हुआ, पर साथ ही वैराग्य ने उसे सावधान कर दिया। वह उसी समय सिद्धार्थ मुनिराज के पास गया और उन्हें नमस्कार कर धर्म का स्वरूप सुनने की उसने इच्छा प्रकट की। सिद्धार्थ ने उसे मुनिधर्म और गृहस्थ-धर्म का खुलासा स्वरूप समझा दिया। सुकौशल को मुनिधर्म बहुत पसन्द पड़ा। वह मुनिधर्म की भावना भाता हुआ घर आया और सुभद्रा की गर्भस्थ सन्तान को अपने सेठ पद का तिलक कर तथा सब माया-ममता, धन-दौलत और स्वजन-परिजन को छोड़कर श्री सिद्धार्थ मुनि के पास ही दीक्षा लेकर योगी बन गया। सच है-जिसे पुण्योदय से धर्म पर प्रेम है और जो अपना हित करने के लिए सदा तैयार रहता है, उस महापुरुष को कौन झूठी-सच्ची सुझाकर अपने कैद में रख सकता है, उसे धोखा दे ठग सकता है? ॥२३-३०॥

एक मात्र पुत्र और वह भी योगी बन गया। इस दुःख की जयावती के हृदय पर बड़ी गहरी

व्याघ्री स्वपापतो जाता त्रिपुत्रा क्रूरमानसा। मुक्त्वा धर्मं जिनद्रोक्तं जन्तुर्यात्येव दुर्गतिम् ॥३२॥
 तदा तौ कर्मयोगेन मुनीन्द्रौ गुणशालिनौ। मौद्गिलपर्वते योगं गृहीत्वा भुवनोत्तमौ ॥३३॥
 चतुर्मासोपवासान्ते पूर्णयोगे जगद्धितौ। चर्यार्थं निर्गतौ तौ च दृष्ट्वा व्याघ्री दुराशया ॥३४॥
 संन्यासेन स्थितौ यावत्तया तावक्रमेण च। भक्षितौ मरणं प्राप्य तदा सारसमाधिना ॥३५॥
 जातौ सर्वार्थसिद्धौ तौ सिद्धार्थाख्यसुकौशलौ। भाविमुक्तिश्रियः कान्तौ शान्तौ मे भवतां श्रिये ॥३६॥
 सा व्याघ्री च समालोक्य खादन्ती तत्पलं तदा। सुकौशलकरे चारु लाञ्छनं भुवनोत्तमम् ॥३७॥
 भूत्वा जातिस्मरी शीघ्रं त्यक्त्वा तत्पापकर्मकम्। हा कष्टं दुष्टसंसारे त्यक्तश्रीजैनसदृषाः ॥३८॥
 भ्रमन्ति प्राणिनो मूढा मादृश्यः पापपंडिताः। पुत्रादीन्भक्षयन्तीति कृत्वा संसारनिन्दनम् ॥३९॥
 संन्यासं च समादाय मृत्वा शुद्धाशयेन सा। प्राप्ता सौधर्मसत्स्वर्गं जीवानां शक्तिरद्भुता ॥४०॥

चोट लगी। वह पुत्र दुःख से पगली-सी बन गई। खाना-पीना उसके लिए जहर हो गया। उसकी सारी जिन्दगी ही धूलधानी हो गई वह दुःख और चिन्ता के मारे दिनोंदिन सूखने लगी। जब देखो तब ही उसकी आँखें आँसुओं से भरी रहती। मरते दम तक वह पुत्रशोक को न भूल सकी। इसी चिन्ता, दुःख, आर्तध्यान से उसके प्राण निकले। इस प्रकार बुरे भावों से मरकर मगध देश के मौद्गिल नाम के पर्वत पर उसने व्याघ्री का जन्म लिया। इसके तीन बच्चे हुए। यह अपने बच्चों के साथ पर्वत पर ही रहती थी। सच हैं, जो जिनेन्द्र भगवान् के पवित्र धर्म को छोड़ बैठते हैं, उनकी ऐसी ही दुर्गति होती है। विहार करते हुए सिद्धार्थ और सुकौशल मुनि ने भाग्य से इसी पर्वत पर आकर योग धारण कर लिया। योग पूरा हुए बाद जब ये भिक्षा के लिए शहर में जाने के लिए पर्वत पर से नीचे उतर रहे थे उसी समय वह व्याघ्री, जो कि पूर्वजन्म में सिद्धार्थ की स्त्री और सुकौशल की माता थी, इन्हें खाने को दौड़ी और जब तक कि ये संन्यास लेकर बैठते हैं, उसने इन्हें खा लिया। ये पिता-पुत्र समाधि से शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धि में जाकर देव हुए। वहाँ से आकर अब वे निर्वाण लाभ करेंगे। ये दोनों मुनिराज आप भव्यजनों को और मुझे शान्ति प्रदान करें ॥३१-३६॥

जिस समय व्याघ्री ने सुकौशल को खाते-खाते उनका हाथ खाना शुरू किया, उस समय उसकी दृष्टि सुकौशल के हाथों के लाञ्छनों (चिह्नों) पर जा पड़ी। उन्हें देखते ही इसे अपने पूर्वजन्म का ज्ञान हो गया। जिसे वह खा रही है, वह उसी का पुत्र है, जिस पर उसका बेहद प्यार था, उसे ही वह खा रही है यह ज्ञान होते ही उसे जो दुःख, जो आत्म-ग्लानि हुई वह लिखी नहीं जा सकती। वह सोचती है, हाय! मुझसी पापिनी कौन होगी जो अपने ही प्यारे पुत्र को मैं खा रही हूँ! धिक्कार है मुझसी मूर्खिनी को जो पवित्र धर्म को छोड़कर अनन्त संसार को अपना वास बनाती है। उस मोह को, उस संसार को धिक्कार है जिसके वश हो यह जीव अपने हित-अहित को भूल जाता है और फिर कुमार्ग में फँसकर दुर्गतियों में दुःख उठाता है। इस प्रकार अपने किए कर्मों की बहुत कुछ आलोचना कर उस व्याघ्री ने संन्यास ग्रहण कर लिया और अन्त में शुद्ध भावों से मरकर व

अहो श्रीजैनसद्धर्म-प्रभावोभुवनोत्तमः। क्व व्याघ्री पापकर्मासौ क्व स्वर्गे सारसंभवः ॥४१॥
ततः श्रीजैनसद्धर्मो स्वर्गमोक्षसुखप्रदः। आराध्यो भक्तितो नित्यं भव्यैः स्वात्मप्रसिद्धये ॥४२॥
सिद्धश्रीमूलसंघाख्ये प्रोक्तुंगोदयभूधरे। भानुर्भट्टारकः स्वामी जीयान्मे मल्लिभूषणः ॥४३॥
प्रोद्यत्सम्यक्त्वरत्नो जिनकथितमहासप्तभंगीतरङ्गैः निर्द्वैतैकान्तमिथ्यामतमलनिकरः क्रोधनक्रादिदूरः।
श्रीमज्जैनेन्द्रवाक्यामृतविशदरसः श्रीजिनेन्द्रप्रवृद्धो। जीयान्मे सूरिवर्यो व्रतनिचयलसत्पुण्यपण्यः श्रुताब्धिः ॥४४॥

इति कथाकोशे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्यब्रह्मनेमिदत्तविरचिते

श्रीसुकौशलश्रेष्ठिनः कथा समाप्ता।

५९. गजकुमारमुनेः कथा

प्रसिद्धं स्वगुणैः सिद्धं पूजार्थं जिननायकम्। नत्वा गजकुमारस्य कथयामि कथानकम् ॥१॥
श्रीमद्भट्टारवतीपुर्यां प्रसिद्धायां जगत्त्रये। श्रीमन्नेमिजिनेन्द्रस्य पवित्रायां सुजन्मना ॥२॥

सौधर्मस्वर्ग में देव हुई। सच है-जीवों की शक्ति अद्भुत ही हुआ करती है और जैनधर्म का प्रभाव भी संसार में बड़ा ही उत्तम है। नहीं तो कहाँ तो पापिनी व्याघ्री और कहाँ उसे स्वर्ग की प्राप्ति इसलिए जो आत्मसिद्धि ने चाहने वाले हैं, उन भव्य जनों को स्वर्ग-मोक्ष को देने वाले पवित्र जैनधर्म का पालन करना चाहिए ॥३७-४२॥

श्री मूलसंघरूपी अत्यन्त ऊँचे उदयाचल से उदय होने वाले मेरे गुरु श्रीमल्लिभूषणरूपी सूर्य संसार में सदा प्रकाश करते रहें ॥४३॥

वे प्रभाचन्द्राचार्य विजयलाभ करें जो ज्ञान के समुद्र हैं। देखिए, समुद्र में रत्न होते हैं, आचार्य महाराज सम्यग्दर्शन रूपी श्रेष्ठ रत्न को धारण किए हैं। समुद्र में तरंगें होती हैं, ये भी सप्तभंगी रूपी तरंगों से युक्त हैं, स्याद्वाद विद्या के बड़े ही विद्वान् हैं। समुद्र की तरंगें जैसे कूड़ा-करकट निकाल बाहर फेंक देती हैं, इसी तरह ये अपनी सप्तभंगवाणी द्वारा एकान्त मिथ्यात्वरूपी कूड़े-करकट को हटा दूर करते थे, अन्य मतों के बड़े-बड़े विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर विजयलाभ करते थे। समुद्र में मगरमच्छ घड़ियाल आदि अनेक भयानक जीव होते हैं, पर प्रभाचन्द्ररूपी समुद्र में उससे यह विशेषता थी, अपूर्वता थी कि उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि भयानक मगरमच्छ न थे। समुद्र में अमृत रहता है और इनमें जिनेन्द्र भगवान् का वचनमयी निर्मल अमृत समाया हुआ था और समुद्र में अनेक तरह की बिकने योग्य वस्तुएँ रहती हैं ये भी व्रतों द्वारा उत्पन्न होने वाली पुण्यरूपी विक्रेय-वस्तु को धारण किए थे ॥४४॥

५९. गजकुमार मुनि की कथा

जिन्होंने अपने गुणों से संसार में प्रसिद्ध हुए और सब कामों को करके सिद्धि, कृत्यकृत्यता लाभ की है, उन जिन भगवान् को नमस्कार कर गजकुमार मुनि की कथा लिखी जाती है ॥१॥